जनचेतना का प्रगतिशील कथा-मासिक

मूल्य : 25 रुपये

हंस

मई, 2007

अंधेरे से सना आलोक

रेखा सेठी

पुस्तक	:	अंधेरे में हँसी
लेखक	:	योगेन्द्र आहूजा
प्रकाशक	:	भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इन्स्टीट्यूशन एरिया, लोदी रोड नई दिल्ली-110003
मूल्य	:	000/-

क्या सच, हम एक ऐसे समय में प्रवेश कर चुके हैं जहां सबकुछ—परिस्थितियां, इतिहास, परिवेश, भावना, विचार—सब इतना गड्ड-मड्ड व अबूझ हो गया है कि जिसे हम जन्म के साथ लेकर पैदा हुए हैं; हँसने और रोने जैसे मूलभाव उनके बचे रहने में भी संदेह हो रहा है. विश्व के भौतिक मानचित्र पर तेज़ी से तरक्की करते देश और मनुष्य के लिए 'खोने' की भी लंबी सूची है. सबसे बड़ी हानि उन नैसर्गिक भावों की हुई है जो हमारे वजूद का हिस्सा हैं. योगेन्द्र आहूजा का पहला कहानी-संग्रह *अंधेरे में हंसी* इसी सत्य का साक्षी है.

इसी संग्रह में, 'एक पुरानी कहानी' शीर्षक कहानी में लेखक मुक्तिबोध के साक्ष्य से कहता है—"मुक्तिबोध जल्दी-जल्दी बोल रहे थे, 'पार्टनर, कवि व्यक्तित्व को निरंतर दो स्तरों पर जूझते रहना होता है, एक दुतरफ़ा संघर्ष...एक ओर अपनी अभिव्यक्ति को पाने का और दूसरी तरफ़ कंडीशंड साहित्यिक रिफ्लेक्सेज़ से बचने का. इस ओर कवि सचेत न हो तो उसकी कविता...इसमें संदेह होगा कि वह उसके कवि व्यक्तित्व का सही प्रतिनिधित्व करती है या...एक निरंतर आत्मनिरीक्षण से ही..."

मुक्तिबोध कवि के लिए जिस दोतरफ़ा संघर्ष का संकेत कर रहे हैं, वह संघर्ष रचनाकार व्यक्तित्व की अनिवार्यता है. योगेन्द्र आहूजा का यह कहानी-संग्रह उनके जूझने का साक्ष्य प्रस्तुत करता है. इस संग्रह में कुल छह कहानियां हैं लेकिन सभी आत्मनिरीक्षण से नहीं, युग की अंधेरी सच्चाइयों से निर्मित हैं. ये सभी कहानियां एक निश्चित कहानीपन से मुक्त हैं. हालांकि यह एक अलग सवाल हो सकता है कि विधा के चौखटे को तोड़ना उनकी संप्रेषणीयता पर कैसे आघात पहुंचाता है. लेखक ने कहानी को उसके 'अध' और 'इति' से तोड़कर कहानियों तक व्याप्त कर दिया है. पात्रों के नाम और स्थितियों में कुछेक फेरबदल होने पर भी अधिकांश कहानियां अलग-अलग कहानियां नहीं लगती वरन् 'एक' लंबी कहानी लगती हैं. यह स्थिति मुक्तिबोध की कविताओं की याद दिलाती है—

'कहीं भी कविता ख़त्म नहीं होती...'

मुक्तिबोध की याद केवल इसी संदर्भ में नहीं आती. मुक्तिबोध की कविताओं की तरह योगेन्द्र आहूजा का रचना-संसार जिस यथार्थ को कहानी-दर-कहानी पुस्तक के पन्नों पर उकेरता है, उसमें हमारे युग की भयावह सच्चाइयां हैं. मुक्तिबोध का यथार्थ स्वतंत्रता के बाद व्यापक स्तर पर फैले शोषण व अवसरवादिता से पैदा हुआ मोहभंग था तो योगेन्द्र आहूजा का कथा-संसार समाजवाद के पतन के बाद विश्व स्तर पर बढ़ते अमेरिकी वर्चस्व और उससे पैदा हुए 'मुश्किल समय' से रचा जाता संसार है. लेखक का कैनवस अत्यंत विस्तृत है. उसमें कबीर का गांव 'मगहर' और सांप्रदायिकता से त्रस्त 'अयोध्या' है; वहां मुक्तिबोध का राजनांदगांव हैं जहां स्वाधीनता के बावजूद भी कवियों की जासूसी की जाती है.

वहां 8 अगस्त, 1942 का गांधी जी का वह मशहूर भाषण है जहां वे सब पर यह ज़िम्मेदारी डालते हैं कि हमें अपना नेता स्वयं होना है. किसी के प्रति मन में बैर और द्वेषभाव रखे बिना सभी के प्रति प्रेम और सहानुभूतिपूर्ण बर्ताव करना होगा. हमें ईश्वर द्वारा प्रदर्शित सत्य मार्ग पर चलकर पूरी लगन के साथ वह कार्य पूरा करना है जिससे न केवल अपने देश में, अपितु समस्त विश्व में, शाश्वत शांति और न्याय की स्थापना हो सके.

'एक पुरानी कहानी' के आरंभ में यह टिप्पणी यूं ही नहीं रखी गई है. लेखकीय सरोकार को निश्चित करने में इसकी सुविचारित भूमिका है. लेखक अब भी उस व्यवस्था का पक्षधर होना चाहता है जो न केवल एक देश में बल्कि पूरे विश्व में स्थायी शांति और न्याय की स्थापना कर सके. और अपने इस वृहद् उद्देश्य के लिए वह गांधीजी के माध्यम से सबकी जिम्मेदारी की ओर भी संकेत करता है. लेखक जिस यथार्थ का सृजन कर रहा है उसमें गांधी एक मूल्य चेतना के रूप में व्याप्त हैं. इसी प्रक्रिया में वह मुक्तिबोध और सर्वेश्वर जैसे हिंदी कवियों को भी याद करता है जिन्होंने अपनी कविताओं में आम आदमी की लड़ाई को वाणी दी है.

योगेन्द्र आहूजा पूरे युग का इतिहास एक पंक्ति में समेट सकते हैं—"...यह एक गरीब मुल्क है जो कल तक गुलाम था....(पृ 96)

इन कहानियों में अनेक संदर्भ कुछ स्वतंत्रता पूर्व युग के तो कुछ स्वातंत्र्योत्तर युग के हैं. लेखक बड़ी बारीकी से इस बात को भी साफ़ कर देता है कि स्वाधीनता से कोई अंतर नहीं आया—न आम आदमी की स्थिति में और न ही व्यवस्था के उस रूप में जो आंदोलनकारी शक्तियों पर नज़र रखती है और उनका दमन करती है. 'एक पुरानी कहानी' में मुक्तिबोध पर निगाह रखने वाला जासूस अजीत शर्मा उनकी जगह काम करने आए नए युवक से कहता है "एक विराट उथल-पुथल होगी, आंदोलन होंगे. सब अपना हक़ मांगेंगे...बढ़ई, लुहार, बुनकर, दर्ज़ी, लकड़हारे. आज़ादी के पहले से भी ज़्यादा काम होगा, और मुश्किल

भी. नज़र रखनी होगी, रपट तैयार करनी होगी. तुम उस वक़्त किसी बड़े शहर में बड़े अफ़सर होंगे, तुम्हारे नीचे तीन सौ जूनियर्स होंगे...'' (पृ 93)

स्वातंत्र्योत्तर युग का इतिहास यही है कि आंदोलन हुए, जासूसी हुई, नज़र रखी गई, रपट तैयार हुई और सत्ता के इस्तेमाल से हर आंदोलन का दमन हुआ. कोई भी आंदोलन क्रांति में तब्दील होकर परिवर्तन न ला सका. विश्व के स्तर पर समाजवाद का पतन न्यायपूर्ण व्यवस्था के सपनों और बहुत-सी आकांक्षाओं के टूटने का सूचक था. संग्रह की पहली कहानी 'सिनेमा-सिनेमा' में योगेन्द्र आहूजा एक प्रेम कहानी के बीच मिखाइल गोर्बाचोव को इसी संदर्भ में याद करते हैं.

गोर्बाचोव यहां 'बाज़ारवाद' को संभव बनानेवाली ताक़त के रूप में आते हैं जिसने शेयर बाज़ार के माध्यम से आम आदमी के साथ ऐसा खिलवाड़ किया कि उसके पास कोई विकल्प ही न बचा. लेखक इसी संदर्भ में बाज़ारवाद के अन्य हामी—सिनेमा के व्याख्याकार विनोद भारद्वाज और बाज़ार कल्चर के भाष्यकार सुधीश पचौरी को भी व्यंग्यपूर्ण ढंग से याद करता है.

इस बाज़ार की संस्कृति में जो सबसे अधिक फला-फूला है, वह है 'प्रॉपटी डीलर' जिसे योगेन्द्र आहूजा 'ग़लत' कहानी के आरंभ में जमकर गालियां देते हैं. उसके फ़रेब और मक्कारी का पर्दाफ़ाश करते हैं. कहानी के मुख्य पात्र केशव का भाई प्रॉपर्टी डीलर है जिसके व्यवसाय से वह बेहद नफ़रत करता है लेकिन स्वयं को उस शिकंजे से पूरी तरह बाहर नहीं कर पाता. जब कॉलिज के दिनों के पुराने सभी मित्र मिलने वाले हैं और सर्वेश्वर, जो क्रांतिकारी विचारधारा वाला व्यक्ति है, के आने का इंतज़ार सभी मित्र कर रहे हैं तो केशव ही है जो पूर्व घोषणा कर देता है कि वह या तो मर चुका है या रास्ते में मार दिया जाएगा लेकिन वह यहां किसी भी हाल में पहुंच नहीं सकेगा. केशव की बात सच होती है. आदेश अवस्थी जब बार-बार आग्रह कर पूछता है कि उसने पहले से कैसे जाना, तब उसका उत्तर दिल दहलाने वाला है—''उस ख़ामोश अंधेरे में किसी प्रेत की तरह केशव की ठंडी, डरावनी आवाज़ सुनाई देती है कि यह जान लेने के लिए न भविष्यवक्ता की सिद्धि चाहिए थी, न आइन्स्टीन का दिमाग़, वह विचारों और सपनों की विदाई का वक़्त था, और सब विचारवान, स्वप्नलीन व्यक्तियों के एक-एक कर जाने का, जिसके बाद बाक़ी बचेगा हमेशा के लिए चटख रंगों वाला एक चिरंतन वर्तमान, सर्वदा एक-सी धूप, एक-सी भीड़-बाज़ारों में, और सूर्य आकाश के बीचोंबीच स्थिर हो जाएगा, और दुनिया की सारी घड़ियां रुक जाएंगी.'' (पृ 71) उत्तर आधुनिक शब्दावली में इसी को 'इतिहास का अंत' कहा गया लेकिन शायद यही सच्चाई है जब अतीत और भविष्य से कटा केवल ऐसा वर्तमान बचा है जिसमें चमक-दमक और आकर्षण तो है किंतु गहराई और सार्थकता की स्थिति संदेहास्पद ही है.

योगेन्द्र आहूजा की ये कहानियां विशिष्ट भी हैं, सामर्थ्यवान भी तथा संभावनापूर्ण भी, इसमें संदेह नहीं किंतु पढ़ते हुए अनेक स्थलों पर वे परेशानी पैदा करती हैं. मुख्य कथा बुनते हुए लेखक उससे इतर तथा उससे जुड़ी हुई स्थितियों, घटनाओं, कभी-कभी फ़िल्मों या साहित्य चर्चा आदि पर लंबे-लंबे विवरण-विश्लेषण देने लगता है. स्वतंत्र टिप्पणियों के रूप में उनका महत्व भले ही आंका जा सकता है लेकिन कहानी की पठनीयता में उससे बाधा पहुंचती है. कहीं-कहीं ये सभी विवरण अनावश्यक भी लगते हैं क्योंकि उनसे कथा को आगे बढ़ाने या लेखकीय उद्देश्य को सिद्ध करने में कहीं भी सहायता नहीं दिखती. शायद कहानीकार अपना सही 'फॉर्म' तलाश रहा है. यदि पुस्तक के मुख पृष्ठ पर छपे मुक्तिबोध की कहानी 'जलना' के उद्धरण को भूमिका माना जाए और उसमें इस प्रश्न का उत्तर तलाशा जाए तो वहां लेखक गणित शास्त्र में आने वाली काल्पनिक संख्या की बात करता है जो काल्पनिक होकर भी फिजूल नहीं है. वह उस समय की बात करता है जब वैज्ञानिक विधि-शिल्प इतना बढ़ जाएगा कि मानव-जीवन प्राकृतिक शक्तियों का इस क़दर दोहन करेगा कि अपने आपको बदल डालेगा और इतिहास में उसके आज के प्रश्न हास्यास्पद जान पड़ेंगे. विज्ञान से प्राप्त नई सुविधाओं के बीच वह फिलासफी व पोएट्री के प्रश्नों पर बहस करेगा. इस अंश की अंतिम पंक्तियां जैसे लेखक का साध्य और स्वप्न हैं—''आई विल लिव इन माई ड्रीम्स. दिस इज़ माई प्राइवेट वर्ल्ड, एण्ड आई एम एण्टाइटिल्ड टु लिव इन इट, आई एम नॉट प्रिपेयर्ड टू लेट अदर्स डिस्ट्रॉय इट!'

आड़ी-तिरछी रेखाओं से बना इन कहानियों का संसार लेखक का अपना संसार है जिनके माध्यम से लेखक सीधे चोट करना चाहता है कि लेकिन जितनी ऊर्जा उसके विचार में है उतनी कहानी में अनूदित नहीं हो पाती. कहानियों में यदि विषयांतर किया जाए तो बिंब इतने सशक्त होने चाहिएं कि कथा के प्रभाव को न बिखरने दें.

भाषा की दृष्टि से कहानीकार की सक्षमता का परिचय मिलता है लेकिन वही कसावट मूल कथा में भी अपेक्षित है. इस दृष्टि से 'कुश्ती' जो इस संग्रह की अंतिम कहानी है, उसमें शिल्प की सादगी मिलती है. कम शब्दों में कही गई यह एक सशक्त कहानी है. दलित और सवर्णों के बीच की यह कुश्ती जो दृश्य-अदृश्य रूप में सदियों से चली आई है, जिसमें पीड़ा भी है, टीस भी और बहते ख़ून की लकीर भी. दुनिया का सबसे बड़ा मनस्तत्वविद् दलित होते हुए भी विश्व भर में अपनी बुद्धि का लोहा मनवाकर गुरु सदानंद पहलवान से अपने पिता के अपमान का बदला लेने आता है. अपने पिता को वह दुनिया का सबसे ताकतवर आदमी समझता था. उसके पिता ने जब गुरु सदानंद को अखाड़े में ललकारा था तो गुरु ने यह कहकर, 'चल हट, मैं भंगी से लड़ूंगा आख़िरी कुश्ती?' उसकी हिम्मत को एक वाक्य से ही खारिज कर दिया था. आज उसका बेटा पूरे विश्व में स्वीकृत होकर अपने पिता का बदला चुकाने आया है. वह स्वयं गुरु सदानंद से कुश्ती लड़ता है और शारीरिक आघात से नहीं मानसिक आघात से उसे तोड़कर चित्त कर देता है. फिर भी, एक से दस तक गिनती गिनकर खेल ख़त्म हुआ, यह नहीं कह पाता क्योंकि खेल ख़त्म होना इतना आसान नहीं. इसके पीछे एक पूरे युग का इतिहास है.

अपने युग के इतिहास को पूरी जिजीविषा के साथ दर्ज करने के कारण ही योगेन्द्र आहूजा की कहानियां विशिष्ट हैं जो आने वाले समय में अपनी अलग पहचान बनाएंगी.

❑